

भारतीय संविधान में कार्यशील महिलाएँ पृष्ठभूमि व संवैधानिक अधिकार



उमा बड़ोलिया

व्याख्याता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय जानकी देवी बजाज कन्या
महाविद्यालय, कोटा,
राजस्थान

सारांश

मानव अधिकारों का प्रश्न वर्तमान विश्व समाज में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया है। स्वतन्त्र भारत में विकास व आधुनिकीकरण को सर्वोपरि रखा गया था। इसके लिए आवश्यक रूप से आर्थिक न्याय व अवसर की समानता का सहज उल्लेख भारतीय संविधान में किया गया। स्वतन्त्र भारत में समाज के पुनः निर्माण की आवश्यक सहभागी कड़ी के रूप में कार्यशील महिला को लिया गया। इस बात में सन्देह नहीं कि महिलाओं में जागरूकता का स्तर बढ़ने लगा है, महिला का स्वआंकलन जो एक दशक पहले निम्न स्तर का पाया जाता था उतरोत्तर उसमें सुधार हुआ है।

महिलाओं को आर्थिक व राजनैतिक अधिकार दिया जाना और उसकी पहचान करना एक धीमी प्रक्रिया है। कानूनी की संस्थागत व्यवस्थाएँ औपचारिक रूप से अधिकार तो प्रदान कर सकती हैं, परन्तु उनका वास्तविक प्रयोग सामाजिक संरचना में निहित है। भारतीय राज वैज्ञानिकों को अपने समाज के संदर्भ में सोचना होगा। अधिकारों को भारतीय संदर्भ व कर्तव्यों के परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है। एक यन्त्र के रूप में महिला का उपयोग राष्ट्र की मुख्य धारा में कर लिया जाये तो माननीय आधार पर हम उसके साथ न्याय नहीं कर सकेंगे। समय आ गया है कि सामाजिक स्तर पर प्रत्येक वर्ग की भूमिकाओं का पुर्न निर्धारण हो।

मुख्य शब्द : कार्यशील महिला, अधिकार, न्याय और अवसर की समानता और संविधान।

प्रस्तावना

उद्देश्य व महत्व

1. कार्यशील महिलाओं को राष्ट्रीय स्तर पर प्रदत्त अधिकारों पर प्रकाश डालना।
2. महिला अधिकारों के व्यावहारिक क्रियान्वयन पर प्रकाश डालते हुए यथार्थवादी विवेचन।
3. क्रियान्वयन में संभावित उपायों का विवेचन।
4. व्यवस्था के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के प्रसास करना।
5. महिलाओं से सम्बन्धित सामाजिक कानूनों की कमियों को प्रकाश में लाना।

प्राचीन भारतीय सभ्यता में धर्म की अवधारणा में व्यापक सामाजिक व्यवस्था के रूप में मानव अधिकारों की चर्चा की गई थी। मानव अधिकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि इसके आधारभूत तत्व प्राचीन साहित्य व धार्मिक पुस्तकों में विद्यमान हैं। इनमें सार्वभौमिक स्तर पर बन्धुता को सर्वोपरि मानकर समानता पर विशेष बल दिया गया था तथा व्यक्तियों के अधिकारों को नहीं कर्तव्यों को तरजीह दी जाती थी। इसके विपरीत वर्तमान लोकतन्त्रीय समाज में अधिकारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। 16वीं 17वीं शताब्दी में व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना के साथ अधिकार सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये।

प्राकृतिक विधि सिद्धान्त, कानूनी अधिकार सिद्धान्त, ऐतिहासिक अधिकार, सिद्धान्त, उदारवादी, सामाजिक कल्याण, आदर्शवादी मार्क्सवादी, न्याय पर आधारित सिद्धान्त का अध्ययन करके यह जानने का प्रयास किया गया कि कौनसा मानव अधिकार सिद्धान्त मानव अधिकारों की संकल्पना को अधिक अच्छी तरह स्पष्ट करता है। जॉन रॉल्स अपनी कृति "न्याय का सिद्धान्त" में आधुनिक प्रजातान्त्रिक कल्याणकारी-राज्यों में आवश्यकतानुसार अनुबंधमूलक न्याय की धारणा का प्रतिपादन करते हैं। उनके अनुसार न्याय किसी भी सामाजिक व्यवस्था की नींव है आर न्याय वस्तुओं व सेवाओं के वितरण से सम्बन्ध रखता है अतः सभी राजनीतिक व वैधानिक निर्णय न्याय को दृष्टि में रखकर लिये जाने चाहिए।

वस्तुतः व्यक्ति हित व सामाजिक हित आपस में नजदीक से जुड़े हुए हैं, दोनों में आपस में विरोध होने पर न्याय पर आधारित सिद्धान्त इस दिशा में कारगर साबित होता है। वास्तव में व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास का अधिकार ही मुख्य मानव अधिकार है तथा अन्य अधिकारों की उत्पत्ति इसी मानव अधिकार से व इसके लिए होती है। संख्यात्मक दृष्टि से बराबर की भागीदारी व सृष्टि के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला महिला वर्ग भी निश्चित रूप से अधिकाधिक अधिकारों की प्राप्ति, संरक्षण व न्याय का हकदार है। प्राचीन भारतीय समाज में नारी का स्थान पूजनीय था उन्हें उच्च शिक्षा के साथ-साथ वेदों की रचना, विवाह सहमति जैसे अधिकार प्राप्त थे। कालान्तर में हुए अनेक विदशी आक्रमणों के फलस्वरूप महिलाओं का कार्यक्षेत्र सीमित होता चला गया, उनकी मर्यादा की रक्षा के लिए किये गये उपायों ने अनेक सामाजिक बुराईयों का स्थान ले लिया। ब्रिटिश शासनकाल में पश्चिमी शिक्षा के फलस्वरूप महिला अधिकारों की पुनः बात की जाने लगी।

सर्वप्रथम राजाराम मोहन रॉय ने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिलाने का पुरजोर प्रयास किया। वे स्त्रियों के आर्थिक अधिकारों के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने सामाजिक न्याय के संदर्भ में स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार का घोर विरोध किया। सुधार आन्दोलन के माध्यम से उनकी उच्च शिक्षा व सामाजिक पुनर्निर्माण में भागीदारी का मार्गप्रशस्त हुआ। भारत का स्वतन्त्रता संग्राम मानवाधिकारों के संघर्ष की गौरवमय कहानी है। गाँधी नेहरू काल में आजादी के लिए चलाये गये आन्दोलन में पुरुष प्रधान देश में महिलाओं ने खुलकर भाग लिया, वे संघर्ष और बलिदान में पुरुषों के बराबर साबित हुईं। गाँधीजी ने तीस के दशक के मध्य महिलाओं और आजादी के लिए बहादुरी से लड़ने वाली योद्धा मृदुला सारा भाई से कहा था कि "मैंने" भारतीय महिलाओं को रसोईघर से बाहर लाने का कार्य कर दिया है, अब आपको इन्हें वापिस लौटने से रोकने का कार्य करना होगा।

20वीं शताब्दी में राजनैतिक भागीदारी ने स्त्रियों के अधिकारों सम्बंधी संभावनाएँ खोल दी जो कि सामाजिक सुधारों में भी प्राप्त नहीं की जा सकती थी। 15 अगस्त 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ, 26 नवम्बर 1949 का संविधान निर्मात्री सभा ने संविधान का निर्माण किया जो कि देश का सर्वोच्च कानून है। इसमें प्राचीन उदारवादी परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया गया। भारतीय संविधान की प्रस्तावना और संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार, राज्यनीति निर्देशक तत्व इस बात की पुष्टि करते हैं कि राजनैतिक सत्ता भारतीयों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति का साधन है। संविधान के अध्याय तीन और चार में सभी मानव अधिकार मौलिक अधिकार के रूप में प्रदान किये गये।

संविधान के भाग 3 में मौलिक अधिकारों का विशद उल्लेख है, ये व्यक्ति की गरिमा का संरक्षण करने और ऐसी दशाएँ बनाने के लिए परिकल्पित है, जिनमें हर

मानव अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके। यह व्यक्तिगत स्वाधीनता पर अतिक्रमण न करने की राज्य पर नकारात्मक बाध्यता अधिरोपित करते हैं। सभी अधिकारों के सम्बंध में समाज के प्रत्येक वर्ग को पूर्ण समानता प्रदान की गई है। लेकिन ये अधिकार असीमित व अप्रतिबन्धित नहीं हो सकते। अन्यथा स्वयं स्वतन्त्राएँ नष्ट हो जायेगी, कानून व्यक्ति के अधिकारों पर सामाजिक नियन्त्रण की भी व्यवस्था करता है। संविधान के भाग 3 का अनुच्छेद 14 राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करने की गारन्टी देता है। विधि का शासन राज्य से यह अपेक्षा करता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को अमानवीय व्यवहार से बचाये, सुनवाई का समुचित अवसर हो, अधिकारियों व नागरिकों में विभेद न हो। यद्यपि समान संरक्षण असमान व्यक्तियों को सुविधाएँ व अवसर प्रदान करके राज्य द्वारा सकारात्मक विधियाँ बनाने का दायित्व संविधान द्वारा स्वीकार किया गया है। अनु. 15 किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग जन्मस्थान के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा, अनु. 15 (3) राज्य को स्त्रियों के लिए विशेष उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगा स्त्री की शारीरिक संरचना व मातृत्व कृत्यों का पालन जीवन निर्वाह के लिए उसे अलाभकर स्थिति में रखते हैं अतः उनके संरक्षण का कोई भी उपबन्ध विभेद निवारण की प्रत्याभूति के विपरीत नहीं होगा।

अनु. 16 लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता प्रदान करता है। कोई भी नागरिक धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, उदभव, जन्म-स्थान, निवास के आधार पर राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के सम्बन्ध में अपात्र नहीं होगा यह समता न केवल नियुक्ति के विषय में होगी बल्कि प्रोन्नति व सेवा के पर्यवसान के विषय में भी है।

अनु. 19 (1) क अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, 19 (1) ख सभा करने, 19 (1) ग संघ बनाने, 19 (1) घ भ्रमण करने, 19 (1) ड आवास की, 19 (1) छ व्यापार, वृत्ति आजीविका की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। अनु. 21 के अन्तर्गत प्राण व दैहिक स्वतन्त्रता का संरक्षण में अब सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार समाहित है, इसी आधार पर 1986 में महिलाओं का अशिष्ट रूपण अधिनियम 1986 पारित किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शोषण भारतीय संविधान के अनु. 14, 16, 21 का उल्लंघन है। भारतीय संविधान के 86वें संवैधानिक संशोधन 2002 में प्रारम्भिक शिक्षा को मूल अधिकार के अनु. 21 (ए) रूप में सम्मिलित कर लिया है।

अनु. 23, 24 मानव के दुर्व्यापार व बलात श्रम का प्रतिषेध करते हैं। इसी के अन्तर्गत संसद ने **Suppression of Immoral Traffic in Women and Girls** पारित किया है। अनु. 32 संविधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान करता है। इसमें बिना उपरोक्त सारे अधिकार निरर्थक हो जाते हैं। मूल अधिकारों की क्रियान्विति की दृष्टि से 2002 से सूचना का अधिकार

विधेयक पारित किया गया, जिससे नागरिकों द्वारा अपने अधिकारों का उपयोग व रक्षा अधिक अच्छे से हो सकें। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य भारत में ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना करना था, जिसमें सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक न्याय मिलें, इसके लिए नीति निर्देशक सिद्धान्त संविधान में रखे गये। अनु. 39 से 51 तक सभी नागरिकों को जीविका के साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराना समान कार्य समान वेतन, कर्मकारों के स्वास्थ्य व शक्ति के दुरुपयोग का प्रतिषेध, काम, शिक्षा, लोक सहायता पाने का अधिकार, काम की मानवोचित दशायें, प्रसूति सहायता के उपबन्ध किये गये हैं। शिष्ट जीवन स्तर के साथ अवकाश के सम्पूर्ण उपयोग, सामाजिक सांस्कृतिक अवसर प्रदान करने के निर्देश राज्य को दिये गये हैं। अनु. 39 के परिप्रेक्ष्य में समय-समय पर विभिन्न श्रम विधियाँ व अधिनियम पारित किये गये जो सभी राज्य क्षेत्रों में लागू हैं। जैसे कारखाना अधिनियम 1948, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952, प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम 1961, समान वेतन अधिनियम 1976 विशेष है। 1981 में प्रभावी हुई भारतीय दण्डसंहिता में भारतीय समाज की स्थिति को देखते हुए स्त्री को संरक्षण प्रदान करने हेतु विशेष उपबन्ध हैं। जैसे भा.द.स. अनु. 228 ए 376 ए, 376 बी, 376 ङ 304 बी, 498 ए आदि। इन उपबन्धों में पति के असीमित व अनुचित विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया गया है। मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय संस्था के महत्व को महसूस करते हुए 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई। आयोग द्वारा की गई सिफारिशों का भारत सरकार के लिए विशेष महत्व है। राष्ट्रीय महिला आयोग व राज्य स्तरों पर महिला आयोगों की स्थापना की गई है, यह मुख्यतः संविधान में महिलाओं के लिये किये रक्षोपायों के विषयों की जाँच के साथ उनके सर्वांगीण विकास की दिशा में कदम उठाने का कार्य करते हैं।

उपरोक्त सभी उपबन्धों से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में सार्वभौमिक उद्घोषणा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। सभी वर्गों को समान रूप से अपने व्यक्तित्व विकास के अवसर प्रदान किये गये हैं। पिछले दशकों में महिलाओं ने अवसरों का लाभ उठाकर अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाकर समाज में अपनी कार्यशीलता का सकारात्मक परिचय दिया है। एक विशिष्ट उत्तरदायी वर्ग के रूप में सुयोग्य कार्यशील महिलाओं पर परिवारों के निर्माण व स्वास्थ्यपरक जीवन शैली अपनाने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है, क्योंकि यह विचारशील व शिक्षित वर्ग है। आज के भारतीय समाज के संदर्भ में हमें अवश्य अवसर की समानता के विषय में पुनः सोचना होगा। क्या हम न्यायपूर्ण समाज की तरह व्यवहार कर रहे हैं?

वर्तमान भारतीय समाज एक Risk Society बन गया है, जिसमें एक व्यक्ति को विशिष्ट तरह की भूमिका के ढाँचे में नहीं ढाला जा सकता। हम लोग बाध्य हैं कि भूमिकाओं के पुनर्निर्धारण के विषय में सोचें। राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक भूमिकाएँ एक सम्पूर्ण संरचना का निर्माण करती हैं। समानता की भौतिक परिस्थितियाँ पैदा करके हम कितनी समानता दे पाये हैं, यह एक विचारणीय

प्रश्न है। एक यन्त्र के रूप में महिला का उपयोग राष्ट्र की मुख्यधारा में कर लिया जाये तो हम मानवीय आधार पर उसके साथ न्याय नहीं कर सकेंगे।

आमतौर पर भारतीय महिला का सामाजिक परिवेश इस तरह का होता है कि उसके पास विश्राम व खाली समय का अधिकार व्यवहार में नहीं है। दोहरे दायित्वों के कारण वह अपने व्यक्तित्व विकास के समुचित अवसर प्राप्त नहीं कर पा रही है। महिला के मातृत्व दायित्वों के कारण मौलिक अधिकारों के पूर्णतः उपयोग पर स्वतः अकुश लग जाता है। उनके वैधानिक अधिकारों का पूर्ण समाजीकरण नहीं हो पाता है। वे अधिक आय प्राप्ति का साधन मात्र बनती जा रही हैं, नौकरी के लिए महिला को जो सुविधाएँ वांछित होती हैं, व्यवहार में समाज वास्तविक रूप से उन्हें प्रदान नहीं कर पाया है। अधिकारों के प्रयोग में सामाजिक वर्जनायें आ खड़ी होती हैं, जानकारी के अभाव में उनका पूर्ण लाभ नहीं ले पाती हैं। कार्यशील महिला एक ओर अतिसंवेदनशीलता तो कहीं उपेक्षा की शिकार होती है। दूसरी ओर आर्थिक स्वावलम्बन के चलते महिलाएँ सामाजिक विखण्डन का कारण भी बन रही हैं जो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से सही नहीं है। एक शून्य अवश्य भारतीय समाज में व्याप्त है, संवेदना का शून्य जिसे समाज ने कार्यशील महिला के चारों ओर बिखेर दिया है आज भी कहीं न कहीं उसे दायम दर्जे की दृष्टि की देखा जाता है। कार्यशील महिलाओं की वैधानिक व वास्तविक प्रस्थिति पर दृष्टिपात करने पर कुछ संभावनाएँ व सुझाव मेरे मस्तिष्क में उभरते हैं जो इस प्रकार हैं।

1. यदि कार्यशील महिला अपने अधिकारों के प्रति जागरूक व संवेदनशील हो तो वह समाज में अपनी Bargaining capacity बढ़ा सकती है।
2. भारतीय मध्यम वर्ग आमतौर पर रोजी रोटी की समस्याओं से उबर चुका है आज समय की मॉँग है कि परिवार व समाज में सभी वर्ग अपनी-अपनी भूमिका निभायें।
3. महिला अपना स्व-आंकलन परिवार व समाज के प्रति उत्तरोत्तर सकारात्मक दिशा में करें।
4. समाज (विशेषतः पुरुष वर्ग) उसकी भूमिका को सकारात्मक दृष्टिकोण से लेने लगा है, सामाजिक पुनः निर्माण में एक सबल सहकर्मी के रूप में उसकी भूमिका को भविष्य में मान्यता मिलने लगेगी।
5. सूचना क्रान्ति शिक्षा, आर्थिक सहभागिता के चलते महिला अपनी स्थिति को और अधिक सुदृढ़ कर सकेगी।
6. दोहरी भूमिकाओं में से एक न एक के कतव्यों से बचने की मानसिकता नारी को अधिक आगे तक नहीं ले जा सकती। आवश्यकता है सबल सुचारु तरीके से दोनों दायित्वों के निर्वहन की।
7. अविवाहित कामकाजी महिलाओं के लिए सुविधाजनक सुरक्षित आवास की संस्थागत व्यवस्था होनी चाहिए।
8. विवाह से पूर्व उससे निराधार अपेक्षाएँ नहीं की जानी चाहिए।
9. कार्यस्थल पर बच्चों के लालन-पालन हेतु समुचित क्रेच की व्यवस्था व्यावहारिक रूप से होनी चाहिए

- ताकि स्वयं को उत्तरदायी अनुभव करते हुए वह कार्यस्थल से भागने का प्रयास न करें।
10. बच्चों की जिम्मेदारी पूर्ण करने के बाद कार्य करने की इच्छुक प्रौढ़ महिलाओं के लिए अनुभव के आधार पर आयु सीमा में छूट देने का प्रावधान हो।
 11. व्यक्तिगत जिम्मेदारियों के निर्वहन के लिए अर्द्धवेतन अवकाश की अवधि भी बढ़ायी जानी चाहिए।
 12. कार्यशील महिला के प्रति समाज में सम्मानजनक दृष्टिकोण विकसित हो।
 13. स्त्री-पुरुष सहकार के लिए कार्यों का स्पष्ट विभाजन व परस्पर सहयोग की स्थिति दोनों के मध्य स्पष्ट हो। परिवार के सदस्यों के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया सहज स्वस्थ कुंठा रहित व सामाजिक तिरस्कार के भय से परे होनी चाहिए।
 14. कार्यशील महिलाओं को घरेलू तौर पर अधिक समय प्रदान किया जायें, जिससे वह अपने विचारों को संतुलित रख समय का सदुपयोग कर सके। हाथ से किये गये काम व परम्पराओं की दुहाई कभी-कभी घरेलू प्रताड़ना का कारण बनती है।
 15. मानवता के अधिकार व दायित्व लेकर चलने से हम नई पीढ़ी को बेहतर मानवीय संस्कारों से समृद्ध कर सकेंगे। आवश्यकता है बुजुर्ग वर्ग इस दिशा में नई पीढ़ी के लालन-पालन में अपने दायित्व का निर्वहन करें।
 16. कार्यशील महिला व्यक्तित्व विकास व आर्थिक सशक्तीकरण के प्रयास के साथ पारिवारिक जीवन में आनन्द सृजन की बात सोचें।
 17. महिलाओं को आराम का अधिकार व्यावहारिक धरातल पर उनकी शारीरिक संरचना को देखते हुए दिया जाना चाहिए।
 18. कार्यशील महिला समाज व कार्यस्थल पर हो रही उपेक्षा के कारण हीनभावना व अति संवेदनशीलता के आवरण घेरे को तोड़े स्वयं का आंकलन कर्तव्य निर्वहन की दिशा में सोचकर करें।
 19. अपनी जीवन शैली में पाश्चात्यीकरण की होड़ से परे हटकर भारतीय दर्शन का समावेश करें।
 20. सही मायने में व्यवस्थाओं का प्रजातान्त्रीकरण हो। कानूनों में मानव अधिकारों के प्रतिमान स्थापित किये जायें।
 21. कानून की संस्थागत व्यवस्थाएँ औपचारिक रूप से अधिकार प्रदान कर सकती है परन्तु उनका वास्तविक प्रयोग सामाजिक संरचना में निहित है।
 22. भारतीय सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था में पश्चिमी मॉडल को अपना तो लिया गया है, लेकिन उसकी मूल स्वीकृति का अभाव है, अर्थात् कार्यशील महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों के औपचारिक ढांचे में कोई कमी नहीं है कमी उनको लागू करने में है।
 23. कार्यशील महिलाओं के मानव अधिकारों को भारतीय संदर्भ में समझना होगा।
 24. उपरोक्त संदर्भ में व्यावहारिक पक्ष को लेकर शोध किये जाने की निरन्तर आवश्यकता है।

निष्कर्ष

सामाजिक परिवर्तन एक धीमी प्रक्रिया है, जो आर्थिक संरचना में बदलाव की सहभागी प्रक्रिया है, इस कार्य में कई दशक लग सकते हैं, क्योंकि सामाजिक मूल्यों को आयात नहीं किया जा सकता। समय की माँग है कि महिला अपने स्वआंकलन में सुधार करें व जिम्मेदारियों के चलते अपने कार्यशील होने की उपयोगिता पर विचार करें और समाज व राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व को पूर्ण करें।

संदर्भ

1. इण्डिया टुडे
2. टाईम्स ऑफ इण्डिया
3. त्रिपाठी, प्रदीप, मानवाधिकार और भारतीय संविधान संरक्षण व विश्लेषण नई दिल्ली 2002
4. शर्मा, अनिता, मॉडर्नाईजेशन एण्ड स्टेप्स ऑफ वर्किंग वूमन इन इण्डिया मित्तल पब्लिकेशन 1990
5. नेमा जी.पी. एवं शर्मा के.के. मानवाधिकार सिद्धान्त एवं व्यवहार, कॉलेज बुक डिपो जयपुर।
6. माथुर, कृष्णमोहन, मानव अधिकार व महिलाएँ, अध्याय 4
7. कान्त अंजनी, महिला एवं बाल कानून सेन्ट्रल लॉ एजेंसी
8. देसाई, ए.आर. यादव में प्रजातान्त्रिक अधिकारों का हनन।